

प्रकाशक—

मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

सस्करण

मई, १९३० • ५०००

अप्रैल, १९३८ • २०००

जून, १९३६ : ३०००

मूल्य

एक आना

मुद्रक

हरनामदास गुप्ता,
भारत प्रिटिंग प्रेस,
नया बाजार, दिल्ली

विषय-सूची

प्रस्तावना	...	१
१—सचाई की जड़	...	६
२—शैलत की नमों	...	३५
३—श्रद्धा उन्माद	..	४५
४—मृत्यु क्या है ?	...	५७
५—उपमाहार	...	६३

सर्वोदय

प्रस्तावना

पश्चिम के देशों में स्वास्थ्यरक्षण यह माना जाता है कि बहुसंख्यक लोगों का सुख—उनका अभ्युदय—बढ़ाना मनुष्य का कर्तव्य है। सुख का अर्थ केवल शारीरिक सुख, रुपये-पैसे का सुख किया जाता है। ऐसा सुख प्राप्त करने में नीति के नियम भंग होने हों तो इसकी ज्यादा परवाह नहीं की जाती। इसी तरह बहुसंख्यक लोगों को सुख देने का उद्देश्य रखने के कारण पश्चिम के लोग योंगे को दुःख पहुँचा कर भी बहूतों को सुख दिलाने में कोई बुराई नहीं मानते। इसका फल हम पश्चिम के सभी देशों में देख रहे हैं।

फिन्तु पश्चिम के कितने ही विचारवानों का

कहना है कि बहुसंख्यक मनुष्यों के शारीरिक और आर्थिक सुख के लिए यत्न करना ही ईश्वर का नियम नहीं है, और केवल इतने ही के लिए यत्न करना नैतिक नियमों का भंग करना ईश्वर के नियम के विरुद्ध चलना है। ऐसे लोगों में स्वर्गीय जान रस्किन मुख्य थे। वह अंग्रेज थे और बड़े विद्वान् थे। उन्होंने कला, चित्रकारी आदि विषयों पर अनेक उत्तम पुस्तकें लिखी हैं। नीति के विषयों पर भी उन्होंने बहुत-कुछ लिखा है। उसमें से एक छोटी-सी पुस्तक “अन्टु दिस लास्ट” है। इसे उन्होंने अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना माना है। जहाँ-जहाँ अंग्रेजी बोली जाती है वहाँ इस पुस्तक का बहुत प्रचार है। इसमें ऊपर बताये विचारों का जोरो से खण्डन किया गया है और दिखाया गया है कि नैतिक नियमों के पालन में ही मनुष्य जाति का कल्याण है।

आजकल भारत में हम पश्चिम वालों की बहुत नकल कर रहे हैं। कितनी ही बातों में हम इसकी

जल्द ही सम्भलें हैं: पर इसमें सन्देह नहीं कि पश्चिम की बहुत सी रीतियाँ खराब हैं। और यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि जो खराब हैं उसमें दूर रहना उचित है।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की अवस्था बहुत ही गन्दगीजनक है। हम धन के लिए विदेश जाते हैं। उनकी धुन में नीति को, ईश्वर को, भूल जाते हैं। स्वार्थ में मन जाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि हम विदेश में रहने से लाभ के बदले उलटे बहुत हानि होनी है, अथवा विदेश यात्रा का पूरा-पूरा लाभ नहीं मिलता। सभी धर्मों में नीति का अंश तो रहता ही है; पर साधारण बुद्धि में देखा जाय तो भी नीति का पालन आवश्यक है। जान रस्किन ने मिथ्या किया है कि सुगम उर्ध्वमे है। उन्होंने पश्चिम वालों की आँखें खोल दी हैं और आज यूरोप, अमेरिका के भी जितने ही लोग उनकी शिक्षा के अनुसार चलते हैं। भारत की जनता भी उनके

विचारो से लाभ उठा सके, इस उद्देश्य से हमने उक्त पुस्तक का इस ढंग से साराश देने का विचार किया है जिसमें अंग्रेजी न जानने वाले भी उसे समझ लें ।

सुकरात ने, मनुष्य को क्या करना उचित है इसे संक्षेप में बताया है । कह सकते हैं कि उसने जो-कुछ कहा है, रस्किन ने उसीका विस्तार कर दिया है—रस्किन के विचार सुकरात के ही विचारो का विस्तृत रूप है । सुकरात के विचारो के अनुसार चलने की इच्छा रखनेवालो को भिन्न-भिन्न व्यवसायो में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, रस्किन ने इसे बहुत अच्छी तरह बता दिया है । हम उनकी पुस्तक का सार दे रहे हैं, उलथानहीं कर रहे हैं । उलथा कर देने से, सम्भव है, बाइबिल आदि ग्रन्थो के कितने हो दृष्टान्त पाठक न समझ पावे । इसीसे हम रस्किन की रचना का सार मात्र दे रहे हैं । हमने पुस्तक के नाम का भी

उलथा नहीं किया है; क्योंकि उसका मतलब भी
 घड़ी पा सकते हैं जिन्होंने अंग्रेजी में वाटविल
 पढ़ी है; परन्तु उसके लिये जानें का उद्देश्य
 सचका कल्याण, सचका (केवल अधिकांश का
 नहीं।) उद्देश्य, उत्कर्ष होने के कारण हमने इस
 का नाम "सर्वोद्देश्य" रक्खा है।

मो० क० गाँधी

सचाई की जड़

मनुष्य कितनी ही भूले करता है, पर मनुष्यो की पारस्परिक भावना—स्नेह, सहानुभूति के प्रभाव, का विचार किये बिना। उन्हे एक प्रकार की मशीन मानकर उनके व्यवहार के नियम गढ़ने से बढ़कर कोई दूसरी भूल नहीं दिखाई देती। ऐसी भूल हमारे लिए लजाजनक कही जा सकती है। जैसे दूसरी भूलों में ऊपर-ऊपर से देखने से कुछ सचाई का आभास दिखाई देता है वैसे ही लौकिक नियमों के विषय में भी दिखाई देता है। लौकिक नियम बनाने वाले कहते हैं कि पारस्परिक स्नेह सहानुभूति तो एक आकस्मिक वस्तु है, और इस प्रकार की भावना मनुष्य की साधारण प्रकृति की गति में बाधा पहुँचाने वाली मानी जानी

चाहिए; परन्तु लोभ और आगे बढ़ने की इच्छा मदा बर्ता रहने वाली वृत्तियां हैं। इसलिए आकस्मिक वस्तु से दूर रहने और मनुष्य को पैसा बटोरने की मशीन मानते हुए केवल इसी ध्यान पर विचार करना चाहिए कि किस प्रकार के श्रम और किस तरह के लेन देन के रोजगार से आदमी अधिक से-अधिक भत्ता एकत्र कर सकता है। इस तरह के विचारों के आधार पर व्यवहार की नीति निश्चित कर लेने के बाद फिर चाहे जितनी पारम्परिक स्नेह-महानुभूति से काम लेते हुए लोक-व्यवहार चलाया जाय।

यदि पारम्परिक स्नेह-महानुभूति का बल लेन-देन के नियम जैसा ही होना नों ऊपर की दलील ठीक कही जा सकती थी। मनुष्य की भावना उसके अन्तर का बल है, लेन-देन का क्रायदा एक सामाजिक नियम है। अर्थात् दोनों एक प्रकार, एक वर्ग के नहीं हैं। यदि एक वस्तु किसी ओर जा रही हो और उसपर एक ओर

से स्थायी-शक्ति लग रही हो और दूसरी ओर से आकस्मिक शक्ति तो हम पहले स्थायी-शक्ति का अन्दाजा लगायेंगे, बाद को आकस्मिक का। दोनों का अन्दाजा मिल जाने पर हम उस वस्तु की गति का निश्चय कर सकेंगे। हम ऐसा इसलिए कर सकेंगे कि आकस्मिक और स्थायी दोनों शक्तियाँ एक प्रकार की हैं, परन्तु मानव-व्यवहार में लें-देन के स्थायी नियम की शक्ति और पारस्परिक भावना रूपी आत्मिक-शक्ति दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। भावना का असर दूसरे ही प्रकार का, दूसरी ही तरह से पड़ता है, जिससे मनुष्य का रूप ही बदल जाता है। इसलिए वस्तु-विशेष की गति पर पड़ने वाले भिन्न-भिन्न शक्तियों के असर का हिसाब जिस तरह हम साधारण जोड़ बाकी के नियम से लगाते हैं उस तरह भावना के प्रभाव का हिसाब नहीं लगा सकते। मनुष्य की भावना के प्रभाव की जाँच-पड़ताल करने

में लेन-देन सखी-बिक्री या मांग और तैयारी के नियम का ज्ञान कुछ काम नहीं आता ।

लौकिक शास्त्र के नियम गलत हैं, ऐसा कहने का कोई कारण नहीं । यदि व्यायाम-शिक्षक या मान ले कि मनुष्य के शरीर में केवल मांस ही है, अस्थि-पत्रर नहीं है और फिर नियम बनाये तो उसके नियम ठीक भले ही हों, पर वह अस्थि पत्रर वाले मनुष्य के लिए लागू नहीं हो सकते । उभी तरह लौकिक शास्त्र के नियम ठीक होने पर भी पारस्परिक भावना में वैधे हुए मनुष्य के लिए नहीं लागू हो सकते । यदि कोई व्यायाम कला विज्ञान कहें कि मनुष्य का मांस अलग कर उसके गेद बनाये जा सकते हैं, उसे रखाकर उसकी टोरी बना सकते हैं और फिर यह भी कहें कि उस मांस में पुनः अस्थि-पत्रर घुमा देने से क्या कठिनाई है तो निश्चय ही हम उसे पागल कहेंगे, क्योंकि अस्थि पत्रर में मांस को अलग कर व्यायाम के नियम नहीं बनाये जा

सकते। इसी तरह यदि मनुष्य की भावना की उपेक्षा करके लौकिक शास्त्र के नियम बनाये जायँ तो वे उसके लिए बेकार हैं। फिर भी वर्तमान लौकिक व्यवहार के नियमों के रचयिता उक्त व्यायाम-शिक्षक के ही ढंग पर चलते हैं। उनके हिसाब से मनुष्य, उसका शरीर केवल कल है और इसी धारणा के अनुसार वह नियम बनाते हैं। वे जानते हैं कि उसमें जीव है, फिर भी वे उसका विचार नहीं करते। इस प्रकार के नियम मनुष्य पर जिसमें जीव—रूह, आत्मा की प्रधानता है—कैसे लागू हो सकता है ?

अर्थ-शास्त्र कोई शास्त्र नहीं है। जब-जब हड़ताले होती है तब-तब हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि वह बेकार है। उस वक्त मालिक कुछ और सोचते हैं और नौकर कुछ और। उम्र समय हम लेन-देन का एक भी नियम लागू नहीं कर सकते। लोग यह दिखाने के लिए खूब मिरपच्ची करते हैं कि नौकर और मालिक दोनों का स्वार्थ

एक ही ओर होना है; परन्तु इस विषय में वह कुछ भ्रमगत है। मन्वद् तो यह है कि एक-दूसरे का सामाजिक स्वार्थ एक न होने पर भी एक-दूसरे का विरोधी होना या विरोधी बन रहना जरूरी नहीं है। एक घर में रोटी के लाले पड़े हैं। घर में माता और उसके बच्चे हैं। दोनों को भूख लगी है। खाने में दोनों के—माता और बच्चे के—स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं। माता खाने है तो बच्चे भूखों मरते हैं और बच्चे खाने हैं तो माँ भूखी रह जाती है। फिर भी माता और बच्चों में कोई विरोध नहीं है। माता अधिक बलवती है तो इस कारण वह रोटी के टुकड़े को खुद नहीं खा डालती। ठीक यही बात मनुष्य के परस्पर के सम्बन्ध के विषय में भी समझनी चाहिए।

धोती डेर के लिए मान लीजिए कि मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है। हमें पशुओं की तरह अपने-अपने स्वार्थ के लिए लड़ना ही चाहिए। तब भी यह बात निश्चय रूप में नहीं

कही जा सकती कि मालिक और नौकर के बीच सदा ही मत-भेद रहना या न रहना चाहिए। अवस्था के अनुसार इम भाव में परिवर्तन हुआ करता है। जैसे अच्छा काम होने और पूरा काम मिलने में तो दोनों का स्वार्थ है, परन्तु नफे के बटवारे की दृष्टि से देखने पर यह हो सकता है कि जहाँ एक का लाभ हो वहाँ दूसरे की हानि हो। नौकर को इतनी कम तनख्वाह देने में कि वह सुस्त और निरुत्साही रहे, मालिक का स्वार्थ नहीं साधता। इसी तरह कारखाना भली-भाँति न चल सकता हो तो भी ऊँची तनख्वाह मागना नौकर के स्वार्थ का भी साधक नहीं है। जब मालिक के पास अपनी मशीन की मरम्मत कराने को भी पैसे न हो तब नौकर का ऊँची तनख्वाह मागना स्पष्टतः अनुचित होगा।

इस तरह हम देखते हैं कि लेन-देन के नियम के आधार पर किसी शास्त्र की रचना नहीं की जा सकती। ईश्वरीय नियम ही ऐसा है कि धन

की गदनी-चदनी के नियम पर मनुष्य का व्यवहार न चलना चाहिए। उसका आधार न्याय का नियम है। इसलिए मनुष्य को समय देवकर नीति या अनीति जिम्मे भी बने अपना काम निकाल लेने का विचार एकदम त्याग देना चाहिए। अमृक प्रकार से आचरण करने पर अन्त में क्या फल होगा उसे कोई भी मदा नहीं बतला सकता, परन्तु अमृक काम न्याय-सगत है या न्याय-विरुद्ध, यह तो हम प्रायः मदा जान सकते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि नीति-पथ पर चलने का फल अच्छा ही होना चाहिए। हाँ, यह फल क्या होगा, किस तरह मिलेगा—यह हम नहीं कह सकते।

नीति-न्याय के नियम से पारम्परिक स्नेह-महानुभूति का समावेश हो जाता है और इसी भावना पर मालिक-नौकर का सम्बन्ध प्रबलित होना है। मान लीजिए, मालिक नौकरों से अधिक-से-अधिक काम लेना चाहता है। उन्हें

जरा भी दम नहीं लेने देता, कम तनख्वाह देता है, दरवे जैसी कोठरियो मे रखता है । सार यह कि वह उन्हे इतना ही देता है कि वह किम्मी तरह अपना प्राण शरीर मे रख सके । कुछ लोग कह सकते है कि ऐमा करके वह कोई अन्याय नहीं करता । नौकर ने निश्चित तनख्वाह मे अपना सारा ममय मालिक को दे दिया है और वह उससे काम लेता है । काम कितना कडा लेना चाहिए, इसकी हद वह दूसरे मालिको को देखकर निश्चित करता है । नौकर को अधिक वेतन मिले तो दूसरी नौकरी कर लेने की उसे स्वतन्त्रता है । इसीको लेन-देन का नियम बनाने वाले अर्थशास्त्र कहते है । और उनका कहना है कि इस तरह कम-से-कम दाम मे अधिक-से-अधिक काम लेने मे मालिक को लाभ होता है और अन्त मे इससे नौकर को भी लाभ ही होता है ।

विचार करने से हम देखेंगे कि यह बात

टीर नहीं है। नौकर अगर मशीन या कल
 मीना और उसे चलाने के लिए किसी विशेष
 प्रकार की ही शक्ति की आवश्यकता होती तो
 वह दिखाव ठीक बैठ सकता था, परन्तु यहाँ तो
 नौकर को नशालिन करने वाली शक्ति उसकी
 आत्मा है। और आत्मा का बल तो अर्थ-
 शान्तियों के नारे नियमों पर हठनाल फेर देता
 है— उन्हें गलत बना देता है। मनुष्य रूपी
 मशीन में धन-रूपी कोयला भोक कर अधिक-
 से-अधिक काम नहीं लिया जा सकता। वह
 अन्धा काम नहीं देख सकती है जब उसकी
 गहानुभूति जगाई जाय। नौकर और मालिक
 के बीच धन का नहीं, प्रीति का बन्धन होना
 चाहिए।

प्रायः देखा जाता है कि जब मालिक चतुर
 और मुत्तैद होता है तब नौकर अधिकतर
 दबाव के कारण ज्यादा काम करना है। इसी
 तरह जब मालिक धालमी और कमजोर होता

है तब नौकर का काम जितना होना चाहिए उतना नहीं होता, पर सच्चा नियम तो यह है कि दो समान चतुर मालिक और दो समान नौकर भी लिये जायँ और तब हम देखेंगे कि सहानुभूति वाले मालिक का नौकर सहानुभूति-रहित मालिक के नौकर की अपेक्षा अधिक और अच्छा काम करता है।

कुछ लोग कह सकते हैं कि यह नियम ठीक नहीं, क्योंकि स्नेह और कृपा का बदला अनेक बार उलटा ही मिलता है और नौकर सिर चढ़ जाता है, पर यह दलील ठीक नहीं है। जो नौकर स्नेह के बदले लापर्वाही दिखाता है, सख्ती की जाय तो वह मालिक से द्वेष करने लगेगा। उदार हृदय मालिक के साथ जो नौकर बदयान्ता करता है वह अन्यायी मालिक का नुकसान कर डालेगा।

सार यह है कि हर समय हर आदमी के साथ परोपकार की दृष्टि रखने से परिणाम

अच्छा ही होता है। यहाँ हम महानुभूति को एक प्रकार की शक्ति मानकर ही उसपर विचार कर रहे हैं। स्नेह उत्तम वस्तु है, इसलिए उसमें सदा काम लेना चाहिए—यह बिलकुल जुदी बात है और यहाँ हम उसपर विचार नहीं कर रहे हैं। यहाँ तो हमें केवल यही दिखाना है कि अर्थशास्त्र के मायारण नियमों को, जिन्हें हम अभी देख चुके हैं, स्नेह-महानुभूति रूपी शक्ति रह कर देनी है। यही नहीं वह एक भिन्न प्रकार की शक्ति होने के कारण अर्थशास्त्र के अन्यान्य नियमों के साथ उसका मेल नहीं बैठना। वह तो उन नियमों को उठाकर अलग रख देने पर ही टिक सकती है। यदि मालिक काँटे की तौल का हिस्सा रखने और बदला मिलने की आशा में ही स्नेह दिवाये तो सम्भव है कि उमेनिगश होना पड़े। स्नेह स्नेह के लिए ही दिखाया जाना चाहिए, बदला तो बिना माँगें अपने-आप ही मिल जाता है। कहने है कि जो खुद अपनी जान दे देता

है वह तो उसे पा जाता है और जो उसे बचाता है वह उसे खो देता है ।

सेना और सेनानायक का उदाहरण लीजिए । जो सेनानायक अर्थशास्त्र के नियमों का प्रयोग कर अपनी सेना के सिपाहियों से काम लेना चाहेगा वह निर्दिष्ट काम उनसे न ले सकेगा । इसके कितने ही दृष्टान्त मिलते हैं कि जिस सेना का सरदार अपने सिपाहियों से घनिष्ठता रखता है, उनके प्रति स्नेह का व्यवहार करता है, उनकी भलाई से प्रसन्न होता है, उनके सुख-दुःख में शरीक होता है, उनकी रक्षा करता है—सारांश यह है कि जो उनके साथ सहानुभूति रखता है वह उनसे चाहे जैसा कठिन काम ले सकता है । ऐतिहासिक उदाहरणों में हम देखते हैं कि जहाँ सिपाही अपने सेनानायक से मुहब्बत नहीं रखते थे वहाँ युद्ध में क्वचित् ही विजय मिली है । इस तरह सेनापति और सैनिकों के बीच स्नेह-सहानुभूति का बल ही

चाम्पविक्रम बल है। यह बात लुटेरों के दिलों में भी पाई जाती है। डाकुओं का बल भी अपने सरदार के प्रति पूर्ण स्नेह रखता है; लेकिन मिल आदि कारखानों के मालिकों और मजदूरों में हमें इस तरह की धनिप्रता दिखलाई नहीं देती। इसका एक कारण तो यह है कि इस तरह के कारखानों में मजदूरों की तनख्वाह का आधार लेन-देन के, मांग और प्राप्ति के नियमों पर रहता है। इसलिए मालिक और मजदूरों के बीच प्रीति के बदले अप्रीति विद्यमान रहती है और मानुभक्ति की जगह उनके सम्बन्ध में विरोध, प्रतिद्वन्द्विता-भी दिखलाई देती है। ऐसी अवस्था में हमें दो प्रश्नों पर विचार करना है।

पहला प्रश्न यह है कि मांग का और प्राप्ति का विचार किये बिना नौकरों की तनख्वाह किस हद तक स्थिर की गई ?

दूसरा यह है कि जिस तरह पुराने परिवारों में मालिक नौकर का या सेना में सेनापति और

सिपाहियों का स्थायी सम्बन्ध होता है, उसी तरह कारखानों में नौकरों की नियत संख्या, बराबर कैसा ही समय आने पर भी कमीवेशी किये बिना, किस तरह रक्खी जा सकती है ?

पहले प्रश्न पर विचार करें। आश्चर्य की बात है कि अर्थशास्त्री इसका उपाय नहीं निकालते कि कारखानेके मजदूरों की तनख्वाह की एक दर निश्चित हो जाय। फिर भी हम देखते हैं कि इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री का पद बोली बोलवा कर बेचा नहीं जाता। उस पद पर चाहे जैसा मनुष्य हो उसे वही तनख्वाह दी जाती है। इस तरह जो आदमी कम-से-कम तनख्वाह ले उसे हम पादरी (विशप) के पद पर नहीं बैठते डाक्टरों और वकीलों के साथ भी साधारणतः इस तरह का सम्बन्ध नहीं रक्खा जाता। इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्त उदाहरण में हम बंधी उजरत ही देते हैं। इसपर कोई पूछ सकता है कि क्या अच्छे और बुरे मजूर की

इजरत एक ही होनी चाहिए ? वास्तव में होना नो यही चाहिए । हमना फल यह होगाकि जिन्म तरु हम सब चिकित्सकों और वकीलों की फीम एक ही होने से अच्छे वकील, डाक्टरों के ही पाम जानें हैं, उमी तरह सब मजूरों की मजदूरी एक ही होने पर हम लोग अच्छे राज और बंद में ही काम लेना पसन्द करेंगे । अच्छे कारीगर का इनाम यही है कि वह काम के लिए पसन्द किया जाय । हमलिय स्वाभाविक और मशे बेनत की दर निश्चित हो जानी चाहिए । जहाँ अपनाडी प्रादमी कम तनखाह लेकर मालिक को धोखा दे सकना है वहाँ अन्त में बुरा ही परिणाम होता है ।

अब दूसरे प्रश्न पर विचार करे । वह यह है कि व्यापार की चाहे जैसी प्रबन्धा हो, फारखाने में जितने प्रादमियों को आगन्ध में रखना हो उतने को सदा रखना ही चाहिए । जब धर्मचारियों को अनिश्चित रूप से काम

मिलता है तब उन्हें ऊँची तनख्वाह मांगनी ही पडती है, किन्तु यदि उन्हें किसी तरह यह विश्वास हो जाय कि उनकी नौकरी आजीवन चलती रहेगी तो वह बहुत थोड़ी तनख्वाह में काम करेंगे। इस तरह यह स्पष्ट है कि जो मालिक अपने कर्मचारियों को स्थायी रूप से नौकर रखता है उसे अन्त में लाभ ही होता है— और जो आदमी स्थायी नौकरी करते हैं उन्हें भी लाभ होता है। ऐसे कारखानों में ज्यादा नफा नहीं हो सकता। वह कोई बड़ा जोखिम नहीं ले सकते। भारी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। सिपाही सेनापति के खातिर मरने को तैयार होता है और सिपाहिगिरी साधारण मजदूरी के पेशे से ज्यादा इज्जत की चीज मानी गई है। सच पूछिए तो सिपाही का काम कत्ल करने का नहीं, बल्कि दूसरों की रक्षा करते हुए खुद कत्ल हो जाने का है। जो सिपाही बनता है वह अपनी जान अपने राज्य को सौंप देता है। यही बात

हम वकील, डाक्टर और पादरी के सम्बन्ध में भी मानते हैं, इसलिए उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। वकील को अपने प्राण निकलने तक भी न्याय ही करना चाहिए। वैद्य को अनेक मकदम सहकर भी अपने रोगी का उपचार करना उचित है। और पादरी— भर्गोपदेशक को चाहिए कि उसपर कुछ भी क्यों न श्रुति पर अपने समुदाय वालों को ज्ञान देता और सच्चा रास्ता बताता रहे।

यदि उपर्युक्त पेशों में ऐसा हो सकता है तो व्यापार में क्यों नहीं हो सकता? प्राखिर व्यापार के मान प्रतीति का नित्य सम्बन्ध मान लेने का क्या कारण है? विचार करने में दिग्दर्श देता है कि व्यापारी मग के लिए स्वार्थी ही मान लिया गया है। व्यापारी का काम भी जनता के लिए उम्मी है; पर हमने मान लिया है कि उस का उद्देश्य केवल अपना घर भरना है। कानून भी इसी दृष्टि से बनाये जाते हैं कि व्यापारी

झपाटे के साथ धन बटोर सके । चाल भी ऐसी ही पड़ गई है कि ग्राहक कम-से-कम दाम दे और व्यापारी जहाँतक हो सके अधिक मांगे और ले । लोगों ने खुद ही व्यापार में ऐसी आदत डाली और अब उसे उसकी वेईमानी के कारण नीची निगाह से देखते हैं । इस प्रथा को बदलने की जरूरत है । यह कोई नियम नहीं होगया है कि व्यापारी को अपना स्वार्थ ही साधना—धन ही बटोरना चाहिए । इस तरह के व्यापार को हम व्यापार न कहकर चोरी कहेंगे । जिस तरह सिपाही राज्य के लिए जान देता है उसी तरह व्यापारी को जनता के सुख के लिए धन गवा देना चाहिए, प्राण भी दे देने चाहिए । सभी राज्यों में—

सिपाही का पेशा जनता की रक्षा करना है,
धर्मोपदेशक का, उसको शिक्षा देना है,
चिकित्सक का, उसे स्वस्थ रखना है;
वकील का, उसमें न्याय का प्रचार करना है,

प्रौर व्यापारी का उसके लिए आवश्यक माल जुटाना है ।

इन सब लोगों का कर्तव्य समय आने पर अपने प्राण भी दे देना है ।

अर्थान्—

पर पाँछे हटाने के बदले मिपाही को अपनी जगाह पर खड़े-खड़े मृत्यु स्वीकार कर लेनी चाहिए ।

प्लेग के समयभाग जानेके बदले चाहें खुद प्लेग का शिकार होजाय तो भी चिकित्सक का हाँ मौजूद रहकर रोगियों का इलाज करने रहना चाहिए ।

मृत्यु की शिक्षा देने में लोग मार डाले तो भी मरने दमनक धर्मोपदेशक को भूठ के बदले मृत्यु ही की शिक्षा देते रहना चाहिए ।

न्याय के लिए मरना पड़े तब भी वहील को मरना बल करना चाहिए कि न्याय ही हो ।

इन प्रकार उपर्युक्त पेशे वालों के लिए मरने

का उपयुक्त समय कौन-सा है, यह प्रश्न व्यापारियों तथा दूसरे सब लोगों के लिए भविष्यकारणीय है। जो मनुष्य समय पर मरने के तैयार नहीं है वह, जीना किस कहते हैं, यह नहीं जानता। हम देख चुके हैं कि व्यापारी का काम जनता के लिए जरूरी सामान जुटाना है। जिस तरह धर्मोपदेशक का काम तनख्वाह लेना नहीं, बल्कि उपदेश देना है, उसी तरह व्यापारी का काम नफा कमाना नहीं, किन्तु माल जुटाना है। धर्मोपदेश देने वाले को रोटी और व्यापारी को नफा तो मिल ही जाता है, पर दोनों में से एक को भी काम तनख्वाह या नफे पर नजर रखना नहीं है। उन्हें तनख्वाह या मुनाफा मिले या न मिले फिर भी अपना काम अपना कर्तव्य करते रहना ही है। यदि यह विचार ठीक हो तो व्यापारी को ऊँचा दर्जा मिलना चाहिए, क्योंकि उसका काम बढ़िया माल तैयार कराना और जिसमें जनता का लाभ

एँ उम प्रकार उम ज़ुटाना, पहुँचाना है। उस काम में जो मैकड़ों या हजारों आदमी उमके मानहून एँ उनकी रक्षा और बीमार होने पर दवा उलाज़ करना भी उमका कर्तव्य है। यह करने के लिए बहुत धीरज, बहुत स्नेह-महानुभृति और बहुत चतुराई चाहिए।

भिन्न भिन्न काम करते हुए औरों की तरह व्यापारी के लिए भी जान दे देने का अवसर आवेतां वह प्राण समर्पण कर दे। ऐसा व्यापारी चाहे उमपर कैसा ही सड़क आ पड़े, चाहे वह भिखारी हो जाय, पर न तो खराब माल बचेगा और न लोगों को धोखा ही देगा। साथ ही अपने यहाँ काम करने वालों के साथ अत्यन्त स्नेह का व्यवहार करेगा। अक्सर बड़े कारखानों या कारखारों में नवयुवक नौकरी करते हैं। उनमें से फ़ितनों को घरवार छोड़कर दूर जाना होता है। वहाँ तो मालिक को ही उनके मां बाप बनना होता है। मालिक इन विषय में

लापवाह होता है तो बेचारे नवयुवक बिना मां बाप के होजाते हैं। इसलिए पद-पद पर व्यापारी या मालिक को अपने-आपसे यही प्रश्न करते रहना चाहिए कि "मे जिस तरह अपने लड़को को रखता हूँ वैसा ही वर्ताव नौकरो के साथ भी करता हूँ या नहीं ?"

जहाज के कप्तान के नीचे जो खलासी होते हैं उनमें कभी उसका लड़का भी हो सकता है। सब खलासियों को लड़के के समान मानना कप्तान का कर्त्तव्य है। उसी तरह व्यापारी के यहाँ अनेक नौकरो में यदि उसका लड़का भी हो तो काम-काज के बारे में वह जैसा व्यवहार अपने लड़के साथ करता है वैसा ही दूसरे नौकरो के साथ भी उसे करना होगा। इसीको सच्चा अर्थशास्त्र कहना चाहिए। और जिस तरह जहाज के खतरे में पड़ जाने पर कप्तान का कर्त्तव्य होता है कि वह स्वयं सबके बाद जहाज से उतरे, उसी तरह अकाल इत्यादि सङ्कटों में

न्यापारों का कर्तव्य है कि अपने आदमियों की रक्षा अपने से पहले करें। इस प्रकार के विचार, सम्भव है, कुछ लोगों को विचित्र मालूम हों, परन्तु ऐसा मालूम होना ही इस जमाने की विशेषता—नवीनता है, क्योंकि विचार करते यह सभी देख सकते हैं कि सच्ची नीति तो वही हो सकती है जो अभी चतलाई गई है। जिसे समाज को ऊपर उठना है उसमें हमारे प्रकार की नीति कदापि नहीं चल सकती। अंग्रेज जानि आज तक कायम है, तो हमका कारण यह नहीं है कि हमने अर्थशास्त्र के नियमों का अनुसरण किया है, बल्कि यह है कि थोड़े लोगों ने उन नियमों का भंग करके उपर्युक्त नैतिक नियमों का पालन किया है। इसीसे यह नीति अथवा अपना अस्तित्व कायम रख नहीं है। इन नीति-नियमों का भंग करने से हमें सी छानियाँ लेनी हैं और किन्तु तरह समाज को पीछे, हटाना पड़ता है, इसका विचार हम

आगे चलकर करेगे ।

हम सचाई के मूल के सम्बन्ध में पहले ही कह चुके हैं । कोई अर्थशास्त्री उसका जवाब इस प्रकार दे सकता है—“यह ठीक है कि पारस्परिक स्नेह-सहानुभूति से कुछ लाभ होता है, परन्तु अर्थशास्त्री इस तरह के लाभ का हिसाब नहीं लगाते । वह जिस शास्त्री की विवेचना करते हैं वह केवल इसी बात का विचार करता है कि मालदार बनने का क्या उपाय है । यह शास्त्र गलत नहीं है, बल्कि अनुभव से इसके सिद्धान्त प्रभावकारी पाये गये हैं । जो हम शास्त्र के अनुसार चलते हैं वह निश्चय ही धनवान् होते हैं और जो नहीं चलते हैं वह कङ्काल हो जाते हैं । यूरोप के सभी धनिकों ने इसी शास्त्र के अनुसार चलकर पैसा पैदा किया है । इसके विरुद्ध दलीले उपस्थित करना व्यर्थ है । हरेक तजरवेकार जानता है कि पैसा किस तरह आता और किस तरह जाता है ।”

पर यह उत्तर ठीक नहीं है। व्यापारी रूपसे
 समझते हैं, पर यह बात नहीं जान सकते कि उन्होंने
 मनमन कमाया या नहीं और उसमें राष्ट्र का
 कुछ भला क्या है या नहीं। 'यत्नवान' शब्द
 का अर्थ भी यह अर्थ नहीं समझते। वह
 हम बात को नहीं जान पाते कि जहाँ यत्नवान
 लोगें वहाँ गरीब भी लोगें। कितनी ही बार यह
 भूल से यह बात लेते हैं कि किन्हीं निर्दिष्ट नियम
 के अनुसार चलने से सभी आदमी बनी हो सकते
 हैं। मन प्रदिष्ट तो यह मामला कुछ के
 रहते जैसा है। एक के खाने को पर दूसरा
 भरता है। आपके पान जो एक रूपसे होता है
 उसका अर्थिकार उसपर चलता है जिसके पान
 चलता नहीं होता। अगर आपके नामने या पान
 वाले आदमी को आपके रूपसे की गरजन होतो
 आपका रूपसे बेकार है। आपके रूपसे की शक्ति
 हम बात पर अवलंबित है कि आपके पड़ोसी
 को रूपसे ही समझते नहीं है। जहाँ गरीबी है वही

अमीरी चल सकती है। उम्माका मतलब यह हुआ कि एक आदमी को धनवान् होना हो तो उसे अपने पड़ोसियों को गरीब बनाये रहना चाहिए।

सार्वजनिक अर्थशास्त्र का अर्थ है ठीक समय पर ठीक स्थान में आवश्यक और सुखदायक वस्तुये उत्पन्न करना, उनकी रक्षा करना और उनका अदल-बदल करना। जो किसान ठीक समय पर फसल काटता है, जो राज ठीक-ठीक चुनाई करता है, जो बढई लकड़ी का काम ठीक तौर से करता है, जो स्त्री अपना रसोई-घर ठीक रखती है, उन सबको सच्चा अर्थशास्त्री मानना चाहिए। ये लोग सारे राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाने वाले हैं। जो शास्त्र इसका उलटा है वह सार्वजनिक नहीं कहा जा सकता। उम्मे तो केवल एक मनुष्य धातु इकट्ठी करता है और दूसरो को उसकी तङ्गी में रखकर उसका उपभोग करता है। ऐसा करनेवाले यह सोच कर कि उनके खेत और ढोर बगैरा के कितने

रूपये मिलेंगे, अपने को उतना ही पैसे वाला मानते हैं। वे यह नहीं सोचते कि उनके रूपयों का मूल्य उममें जितने रत्न और पशु मिल सके उतना ही है। साथ ही वे लोग धातु का, रूपयों का संग्रह करते हैं। वे यह भी हिमात्र लगाने हैं कि उममें कितने गजदूर मिल सकेंगे। एक आत्मी के पास सोना-चाँदी या अन्न आदि मौजूद है। उसे आदमी को नौकरों की जरूरत होगी; परन्तु यदि उमके पड़ोसियों में से किसी को सोने-चाँदी या अन्न की जरूरत न हो तो उसे नौकर मिलना कठिन होगा। अतः उम मालदार को खुद अपने लिए गोटी पकानी पड़ेगी, रात अपने कपड़े सीने पड़ेगे और खुद ही अपना रत्न जोतना होगा। इस दशा में उमके लिए उमके सोने का मूल्य उमके रत्न के पीले कल्लों से अधिक न होगा। उमका अन्न मड़ जायगा; क्योंकि वह अपने पड़ोसी से ज्यादा तो रत्न न सकेगा। फल यह होगा कि उमको भी

दूसरो की तरह कडी मेहनत करके ही गुजर करना पडेगा । ऐसी अवस्था मे अधिक आदमी सोना-चाँदी एकत्र करना पमन्द न करेगे । गहरा विचार करने पर हमे मालूम होगा कि धन प्राप्त करने का अर्थ दूसरे आदमियो पर अधिकार प्राप्त करना—अपने आगम के लिए नौकर व्यापार या कारीगरी—मेहनत पर अधिकार प्राप्त करना है । और यह अधिकार पडोसियो की गरीबी जितनी कम-ज्यादा होगी उमी हिसाब से मिल सकेगा । यदि एक बढई से काम लेने की इच्छा रखनेवाला एक ही आदमी हो तो उसे जो मजदूरी मिलेगी वही वह ले लेगा । यदि ऐसे दो-चार आदमी हो तो उमे जहां अधिक मजदूरी मिलेगी वहां जायगा । निचोड यह निकला कि धनवान् होने का अर्थ जितने अधिक आदमियो को हो सके उतने को अपने से ज्यादा गरीबी मे रखना है । अर्थशास्त्री अनेक बार यह मान लेते है कि इस तरह लोगो

तो तंगी में रहने से राष्ट्र का लाभ होता है। सब बराबर हो जायें, यह तो हो नहीं सकता, परन्तु अनुचित रूप से लोगों से गरीबी पैदा करने से जनता दुखी हो जाती है, उसका अपकार होना है। कदाली और मालदारी स्वाभाविक रूप से ही तो राष्ट्र सुनी होता है।

: २ :

दीनत की नसें

उन प्रकार किमी विंगेप राष्ट्र से रुपये-पैसे का चाण्ड शरीर में रक्त-सञ्चार के समान है। तंगी के साथ रक्त का सञ्चार होना या तो स्वास्थ और व्यायाम का सूचक होता है, या लज्जा अथवा ज्वर का। शरीर पर एक प्रकार की लाली स्वास्थ सूचिन करती है। दूसरे प्रकार की रक्त पित्त रोग का चिह्न है। फिर एक स्थान में रक्त का जमा हो जाना जिसे तरह शरीर को

हानि पहुँचाता है उसी तरह एक स्थान में धन का सञ्चित होना भी राष्ट्र की हानि का कारण हो जाता है।

मान लीजिए कि दो खलासी जहाज के टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाने से एक निर्जन किनारे पर आ पड़े हैं। वहाँ उन्हें खुद मेहनत करके अपने लिए खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने पड़ते हैं। यदि दोनों स्वस्थ रहकर एक साथ काम करते रहे तो अच्छा मकान बना सकते हैं, खेत तैयार कर खेती कर सकते हैं और भविष्य के लिए कुछ बचा भी सकते हैं। इसे हम सच्ची सम्पत्ति कह सकते हैं और यदि दोनों अच्छी तरह काम करे तो उसमें दोनों का हिस्सा बराबर माना जायगा। इस तरह इनपर जो शास्त्र लागू होता है वह यह है कि उन्हें अपने परिश्रम का फल बाँट लेने का अधिकार है। अब मान लीजिए कि कुछ दिनों के बाद इनमें से एक आदमी को असन्तोष हुआ, इसलिए उन्होंने

रंग बोट लिये और अलग-अलग अपने-अपने
 लिए काम करने लगे। फिर मान लीजिए कि
 सभी रंग सौंफें पर एक आदमी बीमार पड़ गया।
 सभी रंगों में वह स्वभावतः दूसरे को मदद के
 लिए नुलावेगा। उन समय दूसरा कह सकता
 है कि मैं तुम्हारा इतना काम कर देने को तैयार
 हूँ, पर शर्त यह है कि मुझे आवश्यकता पड़े
 तो तुम्हें भी मेरा इतना ही काम कर देना होगा।
 तुम्हें यह लिये देना होगा कि तुम्हारे रंग में मैं
 जितने गण्टे काम करूँगा उतने ही घण्टे,
 जहरन पड़ने पर, तुम मेरे रंग में काम कर
 ोगे। यह भी मान लीजिए कि बीमार की
 बीमारी लखी चली और हरवार उसे उस
 आदमी को उन्हीं तरह का उकरारनामा लिये
 कर देना पड़ा। अब जब बीमार आदमी अन्ध
 होगा तब उन रंगों की स्थिति क्या होगी? हम
 देखेंगे कि रंगों ही पट्टे से गरीब हो गए हैं,
 क्योंकि बीमार आदमी जवनक रंग पर पड़ा

रहा तबतक उसे अपने काम का लाभ नहीं मिला । यदि हम मानले कि दूसरा आदमी खूब परिश्रमी है तब भी इतनी बात तो पक्की ठहरी कि उसने अपना जितना समय बीमार के खेत में लगाया उतना समय अपने खेत में लगाने से उसे वञ्चित रहना पडा । फल यह हुआ कि जितनी सम्पत्ति दोनों की मिलकर होनी चाहिए थी उसमें कमी हो गई ।

इतना ही नहीं, दोनों का सम्बन्ध भी बदल गया । बीमार आदमी दूसरे आदमी का कर्जदार होगया । अब वह अपनी मेहनत देने के वाद ही, मजदूरी करके ही अपना अनाज ले सकता है । अब मान लीजिए कि उस चगे आदमी ने बीमार आदमी से लिखाये हुए इकरारनाम का उपयोग करने का निश्चय किया । यदि वह ऐसा करता है तो वह पूर्ण रूप से विश्राम ले सकता है—आलसी बन सकता है । वह चाहे तो बीमारी से उठे हुए आदमी से दूसरे इकरारनाम

भी लिखवा सकना है। यह कोई नहीं कह सकेगा कि हममें कोई बेकाम्यता बात हुई।
 अब यदि कोई परदेसी यहाँ आवे तो वह देखेगा कि एक आदमी धनी हो गया है और दूसरा बीमार पड़ा है। एक पेश-आराम करना है, आलस्य में दिन गिनाना है, और दूसरा मजदूरी करना हुआ भी कष्ट में निर्वाह कर रहा है। इस उदाहरण में पाठक देख सकेंगे कि हमारे से काम लेने के लक्ष का फल यह होता है कि वास्तविक सम्पत्ति घट जाती है।

अब दूसरा उदाहरण लीजिए। तीन आदमियों ने मिलकर एक गन्ध की स्थापना की और तीनों अलग अलग रहने लगे। हर एक ने अलग-अलग सभी फसल पैदा की जो सब के काम आ सके। मान लीजिए कि उनमें से एक आदमी गधका समय बचाने के लिए एक का माल दूसरे के पास पहुँचाने का जिम्मा ले लेता है और दूसरे बदले में अन्न लेता है। अगर वह

आदमी ठीक तौर से माल लाये व ले जाय तो सबको लाभ होगा, पर मान लीजिए कि यह आदमी माल लाने लेजाने में चोरी करता है। बाद को सख्त जरूरत के समय यह दलाल वही चुराया हुआ अन्न बहुत ही महंगे भाव उनके हाथ बेचता है। इस तरह करते-करते यह आदमी दोनो किसानो को भिखारी बना देता है और अन्त में अपना मजदूर बना लेता है।

ऊपर के दृष्टान्त में स्पष्ट अन्याय है, पर आज के व्यापारियो का यही हाल है। हम यह भी देख सकेंगे कि इस चोरी की कार्रवाई के बाद तीनों आदमियों की सम्पत्ति इकट्ठी करने पर उससे कम ठहरेगी जितनी उस आदमी के ईमानदार बने रहने पर होती। दोनो किसानो का काम कम हुआ। आवश्यक चीजे न मिलने से अपने परिश्रम का पूरा फल वह न पा सके। साथ ही उस चोर दलाल के हाथ चोरी का जो लगा उसका भी पूरा और अच्छा उप-

योग नहीं हुआ ।

उस तरह हम (ब्राह्मण) गणित का नाम स्पष्ट दिनाचल लगाकर राष्ट्र विशेष की सम्पत्ति की जाँच कर सकते हैं । उस सम्पत्ति की प्राप्ति के मायनों पर उसे अनवान मानने या न मानने का आधार है । किसी राष्ट्र के पास उतने पैसे हैं उतलिया वह उतना धनवान है, यह नहीं कहा जा सकता । किसी आदर्मी के पास धन का होना जिस तरह उसके आव्यवसाय, चातुर्य और उन्नतिशीलता या लक्षण हो सकता है, उन्ही तरह वह हानिकर भोग विलास, अत्याचार और जाल-फरेब का मूचक भी हो सकता है । केवल नीति ही हमें उस तरह दिनाचल लगाना सिखाती है । एक धन ऐसा होता है जो दम गुना हो जाता है । दूसरा ऐसा होता है कि एक आदर्मी के हाथ में गते हुए दम गुने धन का नाश कर देता है ।

तात्पर्य यह कि नीति प्रनीति का विचार

किये बिना धन बटोरने के नियम बनाना केवल मनुष्य का घमण्ड दिखाने वाली बात है। “सस्ते से-सस्ता खरीदकर महंगे-से-महंगा बेचने” के नियम के समान लज्जाजनक बात मनुष्य के लिए दूसरी नहीं है। “सस्ते-से-सस्ता लेना” तो ठीक है, पर भाव घटा किस तरह ? आग लगने पर लकड़ियाँ जल जाने से जो कोयला बन गया है वह सस्ता हो सकता है। भूकम्प के कारण धराशायी हो जाने वाले मकानों की ईंटे सस्ती हो सकती है। किन्तु इससे कोई यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि आग और भूकम्प की दुर्घटनाये जनता के लाभ के लिए हुई थी। इसी तरह “महंगे से महंगा बेचना” भी ठीक है, पर महंगी हुई कैसे ? आज आप को रोटी के अच्छे दाम मिले। पर क्या आपने वह दाम किसी मरणासन्न मनुष्य की अन्तिम कौड़ियाँ लेकर खडे किये है ? या आपने वह रोटी किसी ऐसे महाजन को दी है

जो कल आपका सर्वस्व हथ कर लेंगा ? या हिस्सी पैसों सिपाही को रो जो आपके बैग पर धावा चालने वाला है ? स्वयं है कि हमसे ये एक ही प्रश्न का उत्तर आप अभी न दे सकें क्योंकि आपको इनका ज्ञान नहीं है। पर आप नें अपनी गैरी उचित मूल्य पर, नीतिमूलक बेची है या नहीं, यह आप बतला सकते हैं। ठाक न्याय टोन को ही चिन्ता रहना आवश्यक भी है। आपके कामन हिस्सी को दुःख नहीं, कतना ही जानना और उस के अनुसार चलना आपका कर्तव्य है।

हम देख चुके कि धन का मूल्य उनके द्वारा लोगों का परिश्रम प्राप्त करने पर निर्भर है। यदि महानत मुफ्त में मिल सके तो पैसों की जरूरत नहीं रहती। पैसों के बिना भी लोगों की महानत मिल सकती है, हमके उदाहरण मिलते हैं। और उनके उदाहरण तो हम पहले ही देख चुके हैं कि धन चल से नाति चल अधिक

काम करता है। इङ्गलैण्ड में अनेक स्थानों में लोग धन से भुलावे में नहीं डाले जा सकते।

यदि हम मान लें कि आदमियों से काम लेने की शक्ति ही धन है तो हम यह भी देख सकते हैं कि वे आदमी जिस परिणाम में चतुर और नीतिमान होंगे उसी परिणाम में दौलत बढ़ेगी। इस तरह विचार करने पर हमें मालूम होगा कि सच्ची दौलत सोना-चाँदी नहीं बल्कि स्वयं मनुष्य ही है। धन की खोज धरती के भीतर नहीं, मनुष्य के हृदय में ही करनी है। यह बात ठीक हो तो अर्थशास्त्र का सच्चा नियम यह हुआ कि जिस तरह बने उस तरह लोगों को तन, मन और मान से स्वस्थ रक्खा जाय। कोई समय ऐसा भी आ सकता है जब इङ्गलैण्ड गोलकुण्डे के हीरो से गुलामों को सजा करके अपने वैभव का प्रदर्शन करने के बदले, ग्रीस के एक सुप्रसिद्ध मनुष्य के कथनानुसार अपने नीतिमान महापुरुषों को दिखा कर कहे कि।

“यही मेरा धन है”

अदल इन्नाफ़।

ईश्वरी मन की कुन्द जनाद्वियों के पहले एक यज़दी व्यापारी होगया है। उमका नाम मोलो-मन था। उमने धन और यश दोनों भरपूर कमाया था। उमकी कहानियों का आज भी यूरोप में प्रचार है। वेनिम के लोग उसे इतना मानते थे कि उन्होंने उमका मूर्ति स्थापित की। उमकी कहानों आज कल याद तो रखी जाती है, परन्तु ऐसे आदमी बहुत कम हैं जो उमके अनुसार आचरण करते हों। वह कहता है—

“जो लोग झूठ बोलकर पैसा कमाते हैं वे धम-एडी हैं और यह उनकी मौत की निशानी है।”

दूसरी जगह उमने कहा है—“हराम की दौलत से कोई लाभ नहीं होता, मृत्यु मौत से घबचता है।”

इन दोनों कहानियों में मालोमन ने बतलाया है कि अन्याय से पैदा किये हुए धन का परिणाम

मृत्यु है। इस जमाने में इतना भूठ बोला और इतना अन्याय किया जा रहा है कि साधारणतः हम उसे भूठ और अन्याय कह ही नहीं सकते। जैसे कि भूठे विज्ञापन का देना, अपने माल पर लोगों को भुलाव में डालने वाले लेवल लगाना, इत्यादि।

अनन्तर वह बुद्धिमान् कहता है—“जो धन बढ़ाने के लिए गरीबों को दुख देता है वह अन्त में दर-दर भीख मागेगा।” इसके बाद कहता है—“गरीबों को न सताओ क्योंकि वह गरीब है। व्यापार में दुखियों पर जुल्म न करो क्योंकि जो गरीबों को सतायेगा, खुदा उसे सतायेगा।” लेकिन आजकल तो व्यापार में मरे हुए आदमी को ही ठोकर मारी जाती है। यदि कोई सकट में पड़ जाता है तो हम उसके संकट से लाभ उठाने को तैयार हो जाते हैं। डकैत तो मालदार के यहाँ डाका डालते हैं परन्तु व्यापार में तो गरीबों को ही लूटा

जाना है ।

फिर मालोमन कहता है—“अमीर और गरीब दोनों समान हैं । खुदा उनको उबन्न करनेवाला है । खुदा उन्हें जान देता है ।” अमीर का गरीब के बिना और गरीब का अमीर के बिना काम नहीं चलना । एक को दूसरे का काम नदानी पडता रहता है । इसलिए कोई कर्मी को ऊँचा या नीचा नहीं कह सकता । परन्तु जब ये दोनों अपनी समानता को भूल जाते हैं और जब उन्हें हम जान का होंग नहीं रहना कि खुदा उन्हें जान देने वाला है, तब विपरीत परिणाम होता है ।

धन नदी के समान है । नदी नदा समुद्र की ओर अर्थात् नीचे की ओर बहती है । इसी तरह धन को भी जहाँ आवश्यकता होवनी जाना चाहिये । परन्तु जैसे नदी की गति बदल सकती है वैसे धन की गति में भी परिवर्तन हो सकता है । कितनी ही नदियाँ टप-टप बहने लगती

है और उनके आस-पास बहुत-सा पानी जमा हो जाने से जहरीली हवा पैदा होती है। इन्हीं नदियों में बाँध-बाँध कर, जिधर आवश्यकता हो उधर उनका पानी ले जाने से वही पानी जमीन को उपजाऊ और आस-पास की वायु को उत्तम बनाता है। इसी तरह धन का मनुमाना व्यवहार होने से बुराई बढ़ती है, गरीबी बढ़ती है। साराश यह है कि वह धन विपतुल्य हो जाता है। पर यदि उसी धन की गति निश्चित कर दी जाय और उसका नियम पूर्वक व्यवहार किया जाय तो बाँधी हुई नदी की तरह वह सुखप्रद बन जाता है।

अर्थ-शास्त्री धन की गति के नियन्त्रण के नियम को एक दम भूल जाते हैं। उनका शास्त्र केवल धन प्राप्त करने का शास्त्र है। परन्तु धन तो अनेक प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। एक जमाना ऐसा था जब यूरोप में धनिक को विप देकर लोग उसके धन से स्वयं धनी बन

जानें थे । आजकल गरीब लोगों के लिए जो न्याय पदार्थ तैयार किये जाते हैं उनमें व्यापारी मिलावट कर देते हैं । जैसे दूध में सुहागा, आटे में आलू, ऊहवे में 'चीकरा', मक्खन में चरबी र्न्धादि । यह भी विप देकर धनवान होने के नमान ही हैं । क्या हमें इन धनवान होने की कला या विज्ञान कह सकते हैं ?

परन्तु यह न समझ लेना चाहिए कि अर्थ शान्ती निरी लूट में ही बनी होने की बात कहते हैं । उनही और में यह कहना ठीक होगा कि उनके शास्त्र कानून-मंगत और न्याययुक्त उपायों से धनवान होने का है । पर हम जमाने में यह भी होता कि अनेक बातें जायज होने हुए भी बुद्धि में विपरीत होती हैं । इसलिए न्याय पूर्वक धन अर्जन करना ही मजा रास्ता कहा जा सकता है । और यदि न्याय में ही पैसा कमाने की बात ठीक हो तो न्याय अन्याय का विवेक उत्पन्न करना मनुष्य का पहला काम होना

चाहिए । केवल लेन-देन के—व्यावसायिक-नियम से काम लेना या व्यापार करना ही काफी नहीं है । यह तो मछलियों, भेड़िये और चूहे भी करते हैं बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, चूहा छोटे जीव जन्तुओं को खा जाता है और भेड़िया आदमी तक को खा डालता है । उनका यही नियम है, उन्हें दृग्ग ज्ञान नहीं है । परन्तु ईश्वर ने मनुष्य को समझ दी है, न्याय बुद्धि दी है । उसके द्वारा दूसरों को भक्षण कर—उन्हें ठग कर, उन्हें भिखारी बना कर—उसे धनवान न होना चाहिए ।

ऐसी अवस्था में अब हमें देखना है कि मजदूरों को मजदूरी देने का न्याय क्या है ?

हम पहले कह चुके हैं कि मजदूर की उचित पारिश्रमिक तो यही हो सकता है कि उसने जितनी मेहनत हमारे लिए की हो उतनी ही मेहनत, जब उसे आवश्यकता हो, हम भी उसके लिए कर दें । यदि उसे कम मेहनत—

कम काम मिलता है तो हम उसे उसकी मेहनत का कम बदला देते हैं, ज्यादा मिले तो ज्यादा देते हैं ।

एक आदमी को एक मजदूर की आवश्यकता है पर दो आदमी उसका काम करने को तैयार हो जाते हैं । अब जो आदमी कम मजदूरी माँगे उससे काम लिया जाय तो उसे कम मजदूरी मिलेगी । यदि अधिक आदमियों को मजदूर की आवश्यकता हो और मजदूर एक ही हों तो उसे मूँह-माँगी उजरत मिल जायगी और वह प्रायः जितनी होनी चाहिए उसमें अधिक ही होगी । इन दोनों के बीच की दर उचित मजदूरी कही जायगी ।

कोई आदमी मुझे कुछ रुपये उधार दे और उन्हें मैं उसे किसी विशेष अवधि के बाद लौटाना चाहूँ तो मुझे उस आदमी को ब्याज देना होगा । इसी तरह यदि आज कोई मेरे लिए मेहनत करे तो मुझे उस आदमी को

उतना ही नहीं, बल्कि व्याज के तौर पर कुछ अधिक परिश्रम देना चाहिए। आज मंरे लिए कोई एक घण्टा काम करदे तो मुझे उसके लिए एक घण्टा और पांच मिनट या इसमें अधिक काम कर देने का वचन देना चाहिए। यही बात प्रत्येक मजदूर के विषय में समझनी चाहिए।

अब अगर मंरे पास दो मजदूर आये और उन में से जो कम ले उसे मैं काम पर लगाऊँ तो फल यह होगा कि जिससे मैं काम लूँगा उसने तो आधे पेट रहना होगा और जो बेरोजगार रहेगा वह पूरा उपवास करेगा। मैं जिस मजदूर को रक्खू उसे पूरी मजदूरी दूँ तब भी दूसरा मजदूर तो बेकार ही रहेगा। फिर भा जिससे मैं काम में लगाऊँगा उसे भूखो न मरना होगा और यह समझा जायगा कि मैंने अपने रूपये का उचित उपयोग किया। सच पूछिये तो लोगो के भूखो मरने की अवस्था तभी उत्पन्न होती है जब मजदूरों को कम

सजदूरी दी जाती है । मैं उचित सजदूरी दूँ तो मेरे पास व्यर्थ का धन इकट्ठा न होगा मैं भोग विलास में रुपया खर्च न करूँगा और मेरे द्वारा गरीबी न बढ़ेगी । जिसे मैं उचित दाम दूँगा वह दुसरो को उचित दाम देना सीखेगा । उस तरह न्याय का माता मरने के बदले ज्यो-ज्यो पागे बढ़ेगा त्यो-त्यो उसका जोर बढ़ता जायगा । और जिस राष्ट्र में हम प्रसार की न्याय-बुद्धि होगी वह सुखी होगी और उचित रूप से फूल फलेगा ।

हम विचार के अनुसार पर्यजाती भूटे ठहरने हैं । उनका ध्यान है कि ज्यो-ज्यो प्रतिस्पर्धा बढ़ती है त्यो-त्यो राष्ट्र नमृद्ध होता है । वास्तव में यह विचार भ्रान्त है । प्रतिस्पर्धा का उद्देश्य है सजदूरी की दर घटाना ।

हमसे भनवान अधिक धन इकट्ठा करता है और गरीब अधिक गरीब हो जाता है । पंगी प्रतिस्पर्धा चला-उपरी से पन्त में राष्ट्र का

नाश होने की सम्भावना रहती है। नियम तो यह होना चाहिए कि हरेक आदमी को उसकी योग्यता के अनुसार मजदूरी मिला करे। इसमें भी प्रतिस्पर्धा होगी, पर इस प्रतिस्पर्धा के फल-स्वरूप लोग सुखी और चतुर होंगे। क्योंकि फिर काम पाने के लिए अपनी दर घटाने की जरूरत न होगी, बल्कि अपनी कार्यकुशलता बढ़ानी होगी। इसलिए लोग सरकारी नौकरी पाने के लिए उत्सुक रहते हैं। वहाँ दरजे के अनुसार तनखाह स्थिर होती है, प्रतिस्पर्धा केवल कुशलता में रहती है। नौकरी के लिए दरखास्त देने वाला कम तनखाह लेने की बात नहीं कहता, किन्तु यह दिखाता है कि उसमें दूसरों की अपेक्षा अधिक कुशलता है। फौज और जल सेना की नौकरियों में भी इसी नियम का पालन किया जाता है और इसलिए प्रायः ऐसे विभागों में गडबड और अनीति कम दिखाई देती है। व्यापारियों में ही दूषित प्रतिस्पर्धा

चल रही है और उनके फलस्वरूप भोग्यवादी, दगा, फरेब, चोरी आदि अनैतिकों बढ़ गई हैं। दृग्दर्शी और जो माल तैयार होता है वह गृह्य और मजदूरी होता है। व्यापारी चाहता है कि मैं खाऊँ, मजदूर चाहता है कि मैं बीच में कमा लूँ। इस प्रकार व्यवहार बिगड़ जाता है, लोगों में घट पट मर्चा रहती है, गरीबी का जोर बढ़ना है, मजदूरी बढ़ जाती है, महाजन ठग बन जाते हैं, ब्राह्मणों का पालन नहीं करते। एक अन्याय से दृग्दर्शी अनेक अन्याय उत्पन्न होते हैं और अन्त में महाजन, व्यापारी और ब्राह्मण सभी दृग्दर्शी भोग्य और नष्ट होते हैं। जिस राष्ट्र में ऐसी प्रथाएँ प्रचलित होती हैं वह अन्त में दृग्दर्शी पाता है और उमका बन ही बिगड़ जा जाता है।

उर्गीलिण ज्ञानियों ने यह रखा है कि—

“उर्गी वन ही परमेश्वर है नहीं मन्त्रो
परमेश्वर ही छोटे की पूजा है।”

अंग्रेज जाति मुह मे तो कहती है कि धन और ईश्वर मे परस्पर-विरोध है, गरीब ही के घर मे ईश्वर वास करता है, पर व्यवहार मे वह धन को सर्वोच्च पद देते है । अपने धनी आदमियो की गिनती करके अपने को सुखी मानते है । और अर्थशास्त्री शीघ्र धनोपार्जन करने के नियम बनाते है, जिन्हे सीख कर लोग धनवान हो जांय । सच्चा शास्त्र न्यायवुद्धि का है । प्रत्येक प्रकार की स्थिति मे न्याय किस प्रकार किया जाय, नीति किस प्रकार निवाही जय,—जो राष्ट्र इस शास्त्र को सीखता है वही सुखी होता है, बाकी सब वाते वृथा प्रयास है, “विनाश काले विपरीत बुद्धि ” के समान है । लोगो को जैसे भी होसके पैसा पैदा करने की शिक्षा देना उन्हे उलटी अक्ल सिखाने जैसा ही है ।

सत्य क्या है ?

पिछले तीन प्रकरणों में हम देख चुके कि अर्थशास्त्रियों के जो साधारण नियम माने जाते हैं वे ठीक नहीं हैं। उन नियमों के अनुसार आचरण करने पर व्यक्ति और समाज दोनों दुःखी होते हैं। गरीब अधिक गरीब बनता है और पैसों वाले के पास अधिक पैसा जमा होता है, फिर भी दो में से एक भी सुखी होता या रहता नहीं।

अर्थशास्त्री मनुष्यों के आचरण पर विचार न कर अधिक पैसा बटोर लेने को ही अधिक उत्तम मानते हैं और जनता के सुखका आशय केवल धनको बताते हैं। इमीलिए वह मियाते हैं कि कलाकौशल अदि वृद्धि में जितना अधिक धन उकड़ा हो सके उतना ही

अच्छा है। इस तरह के विचारों के प्रचार के कारण इङ्गलैण्ड और दूसरे देशों में कारखाने बढ गये हैं। बहुत से आदमी शहरों में जमा होते हैं और खेती-चारी छोड़ देते हैं। बाहर की सुन्दर स्वच्छ वायु को छोड़कर कारखानों की गन्दी हवा में रात-दिन भांस लेने में सुख मानते हैं। इसके फलस्वरूप जनता कमजोर होती जा रही है, लोभ बढता जा रहा है और अनीति फैलती जा रही है। और जब हम अनीति को दूर करने की बात उठाते हैं तब बुद्धिमान कहलाने वाले लोग कहते हैं कि अनीति दूर नहीं हो सकती, अज्ञानियों को एकदम ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए जैसा चल रहा है वैसा ही चलने देना चाहिए। यह दलील देते हुए वे यह बात भूल जाते हैं कि गरीबों की अनीति का कारण धनवान है। उनके भोग विलास का सामान जुटाने के लिए गरीब रात-दिन मजदूरी करते हैं। उन्हें कुछ सीखने या कोई अच्छा

ताम करने के लिए एक पल भी नहीं मिलना ।
 यन्त्रों को देखकर वह भी धनी होना चाहते हैं ।
 यनी न ही पानेपर विवश होते हैं, भोगवाने हैं ।
 पीछे विवेक ग्राहक, अन्धे गन्ने से धन न
 मिलने देख दगा फरेच से पैसा कमाने का नुथा
 प्रयास करते हैं । उस तरह पैसा और सेहत
 दोनों बर्बाद हो जाते हैं या दगा फरेच फैलाने
 से उनका उपयोग होता है ।

वाग्दत्त ने सच्चा धर्म नहीं है जिम्मे कोई
 उपयोगी वस्तु उपन्न हो । उपयोगी वह है
 जिम्मे मानव जाति का भरण पोषण हो ।
 भरण पोषण वह है जिम्मे मनुष्य को यथेष्ट
 भोजन वस्त्र मिल सके या जिम्मे वह नीति
 के मार्ग पर स्थिर रह आजीवन सन्तुष्ट करना
 रहे । उस दृष्टि से विचार करने से बड़े-बड़े
 आयोजन बेकार माने जायेंगे । सभव है कि
 कल कारखाने गोलरु रत्नवान होने का मार्ग
 बदला करना पापकर्म मान्य हो । पैसा पैसा

करनेवाले बहुतेरे मिलते है, पर उसका यथा-विधि उपयोग करने वाले कम मिलते है। जिस धन को पैदा करने मे जनता तवाह होती हो वह धन निकम्मा है। आज जो लोग करोडपति है वे बडे-बडे और अनीतिमय संग्रामो के कारण करोडपति हुए है। वर्त्तमान युग के अधिकांश युद्धो का मूल कारण धन का लोभ ही दिखाई देता है।

लोग यह कहते हुए दिखाई देते है कि दूसरो को सुधारना, ज्ञान देना असम्भव है, इसलिए जिस तरह ठीक मालूम हो उस तरह रहना और धन बटोरना चाहिए। ऐसा करने वाले स्वय नीति का पालन नही करते। क्योकि जो आदमी नीति का पालन करता है और लोभ मे नही पडता वह पहले तो अपने मन को स्थिर रखता है, वह स्वय सन्मार्ग से विचलित नही होता और अपने कार्य से ही दूसरो पर प्रभाव डालता है। जिनसे समाज बना है वह स्वयं जव

नक नैतिक नियमों का पालन न करे तब तक समाज नीतिवान कैसे हो सकता है ? हम मनुष्य तो मनमाना आचरण कर और पड़ोसी का अनैतिक कं कारण उसके दोष निकाले तो इसका अच्छा परिणाम कैसे हो सकता है ?

उम प्रकार विचार करने से हम देख सकते हैं कि मन साधन मात्र है और उससे सुख तथा दुःख दोनों हो सकते हैं। यदि वह अच्छे मनुष्य के हाथ में पड़ता है तो उसकी बदौलत होती है और अन्न पैदा होता है, किसान निर्दोष मजदूरी करके मन्तोष पाते हैं और राष्ट्र सुखी होता है। स्वभाव मनुष्य के हाथ में धन पड़ने से उससे (मान लीजिए कि) गोले बारूद बनते हैं और लोगों का सर्वनाश साधित होता है। गोला बारूद बनाने वाला राष्ट्र और जिम राष्ट्र पर उनका व्यवहार होता है ये दोनों हानि उठाने और दुःख पाते हैं।

इस तरह हम देख सकते हैं कि सच्चा आदमी

ही सच्चा धन है। जिस राष्ट्र में नीति है वह धन सम्पन्न है। यह जमाना भोग-विलास का नहीं है। हरेक आदमी को जितनी मेहनत मजदूरी हो सके उतनी ही करनी चाहिए। पिछले उदाहरणों में हम देख चुके हैं कि जहाँ एक आदमी आलसी रहता है वहाँ दूसरे को दूनी मेहनत करनी पड़ती है। इङ्गलैण्ड में जो बेकारी फैली हुई है उसका यही कारण है। कितने ही पास में धन हो जाने पर कोई उपयोगी काम नहीं करते अतः उनके लिए दूसरे आदमियों को परिश्रम करना पड़ता है। यह परिश्रम उपयोगी न होने के कारण करने वाले का इससे लाभ नहीं होता। ऐसा होने से राष्ट्र की पूँजी घट जाती है। इसलिए ऊपर से यद्यपि यही मालूम होता है कि लोगों को काम मिल रहा है, परन्तु भीतर से जाँच करने पर मालूम होता है कि अनेक आदमियों को बेकार बैठना पड़ रहा है। पीछे ईर्ष्या भी उत्पन्न होती है, असन्तोष की

जड़ जगती है, और अन्न में मालदार गरीब मालिक गजदर—दोनों अपनी मर्यादा त्याग देते हैं। जिस तरह बिल्ली और चूहे में मदा अनशन रहती है उसी तरह अमीर और गरीब मालिक और गजदर में दुश्मनी हो जाती है और मनुष्य मनुष्य न रह कर पशु की अवस्था में पहुँच जाता है।

उपमहार

महान रश्मिकन के लोगों का न्यूलाना हम तय चूके। ये लोग यद्यपि कितने ही पाठकों को नीरस मानूम होंगे, तथापि जिन्होंने इन्हे एक बार पढ़ लिया हो उनमें हम द्वारा पढ़ने की सिफारिश करने हैं। 'इण्डियन ओपिनियन'

को। सब पाठको से यह आशा रखना कि वे इन पर विचार कर इनके अनुगार आचरण करेगे शायद बहुत बड़ी अभिलाषा कही जाय। पर यदि थोड़े पाठक भी इनका अध्ययन कर इनके गार को ग्रहण करेंगे तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। ऐसा न हो सके तो भी रस्किन के अन्तिम परिच्छेद के अनुसार हमने अपना जो फर्ज अदा कर दिया उसीमें फल का समावेश हो जाता है, इसलिए हमें तो मदा ही सन्तोष मानना उचित है।

रस्किन ने जो बातें अपने भाईयो—अंग्रेजो—के लिए लिखी है वह अंग्रेजो के लिए यदि एक हिस्सा लागू होती है, तो भारत वासीयो के लिए हजार हिस्से लागू होती है। हिन्दुस्तान में नए विचार फैल रहे हैं। आजकल

† इस नाम का गुजराती-अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र महात्माजी ने दक्षिण अफ्रिका में रहते समय डरबन से निकाला था। अब भी यह निकल रहा है।

के पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त युवकों में जोश आया है यह तो ठीक है, पर जोश का अच्छा उपयोग होने में अच्छा और बुरा होने पर बुरा परिणाम होता है। एक ओर मैं यह आवाज उठ रहा हूँ कि स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए और दूसरी ओर मैं यह आवाज आ रही है कि विलायत जैसे कारखाने खोलकर तैयारी के साथ धन बटोरना चाहिए।

स्वराज्य क्या है, उसे हम शायद ही समझते हैं। नेटाल स्वराज्य में है, पर हम कहते हैं कि नेटाल में जो हो रहा है हम भी वही करना चाहते हैं तो ऐसा स्वराज्य नरक राज्य है। नेटाल वाले काफ़िरो को खूबलते हैं, भारतीयों के प्राण हरण करने हैं। स्वार्थ में अन्ये होकर स्वार्थ राज्य भोग रहे हैं। यदि काफ़िर और भारतीय नेटाल में चले जायें तो वे आपस ही में कट मरे।

तब क्या हम ट्रान्सवाल जैसा स्वराज्य प्राप्त करेगे ? जनरल स्मट्स उसके नायको मे से एक है। वह अपने लिखित या जवानी दिये हुए वचनों का पालन नहीं करते। कहते कुछ है और करते कुछ। अंग्रेज उनसे ऊब उठे है। रुपया बचाने के वहाने उन्होंने अंग्रेज सैनिकों की लगी रोजी छीनकर उनके स्थान में डच लोगों को रक्खा है। हम नहीं मानते कि इससे अन्त में डच भी सुखी होंगे। जो लोग स्वार्थ पर दृष्टि रखते हैं वे पराई जनता को लूटने के बाद अपनी जनता को लूटने के लिए सहज ही तैयार हो जायेंगे।

संसार के समस्त भागों पर दृष्टि डालने से हम देख सकते हैं कि जो राज्य स्वराज्य के नाम से पुकारा जाता है, वह जनता की उन्नति और सुख के लिए पर्याप्त नहीं है। एक सीधा उदाहरण लेकर हम आसानी से इस बात को देख सकते हैं। लुटेरों के दल में स्वराज्य हो जाने

ने नया फल होगा, यह सभी जान सकते हैं ।
 उनपर किसी ऐसे मनुष्य का अधिकार हो जो
 स्वयं लुटेरा न हो, नभी वह अन्न में सुखी हो
 सकता है । अमेरिका, फ्रान्स, इंग्लैण्ड ये सभी
 बड़े-बड़े राज्य हैं; पर वह मानने के लिए कोई
 आधार नहीं है कि वे सचमुच सुखी हैं ।

स्वराज्य का वास्तविक अर्थ है अपने ऊपर
 कानून रख सकता । यह वही मनुष्य कर सकता
 है जो स्वयं नीति का पालन करता है, दूसरो
 को धोखा नहीं देता—माता-पिता, स्त्री, बच्चे,
 नौकर-चाकर, पड़ोसी—सबके प्रति अपने
 कर्तव्य का पालन करता है । ऐसा मनुष्य चाहे
 जिस देश में हो, फिर भी स्वराज्य ही भोग रहा
 है । जिस राष्ट्र में ऐसे मनुष्यों की संख्या अधिक
 हो, उसे स्वराज्य मिला हुआ ही समझना
 चाहिए ।

एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर शासन करना
 साधारणतः बुरा कहा जा सकता है । अंग्रेजों

का हमपर राज करना एक उल्टी बात है, परन्तु यदि अंग्रेज भारत से कूच कर जायें तो यह न मानना चाहिए कि भारतीयों ने कोई बहुत बड़ा काम कर लिया। वे हम पर राज्य करते हैं, इसका कारण खुद हमी है। हमारी फूट, हमारी अनीति और हमारा अज्ञान इसका कारण हैं। ये तीन बातें दूर हो जायें तो हमें एक उंगली भी न उठानी होगी और अंग्रेज चुपचाप भारत से चले जायेंगे। यही नहीं हम भी सच्चे स्वराज्य को भोग सकते हैं।

बमबाजी से बहुत से लोग खुश होते दिखाई देते हैं। यह केवल अज्ञान और ना-समझी की निशानी है। यदि सब अंग्रेज मार डाले जा सकें तो उन्हें मारने वाले ही भारत के मालिक बनेंगे। अर्थात् भारत अनाथ ही रहेगा। अंग्रेजों का नाश करने वाले बम अंग्रेजों के चले जाने पर भारतीयों पर बरसेंगे। फ्रांस के

प्रजातन्त्र के अभ्यन्त—राष्ट्रपति—को मारनेवाला फ्रेंच ही नों था। अमेरिका के राष्ट्रपति क्लीव लैंण्डक को मारनेवाला एक अमेरिकन ही था। इसलिए हमें उचित है कि हम लोग उतावली करके बिना विचारे पाश्चात्य राष्ट्रों का अन्व अन्वकरण कदापि न करें।

जिस तरह पाप कर्म से—अंग्रेजों को मारकर मजा स्वराज्य नहीं प्राप्त किया जा सकता, उसी तरह भारत में कारखाने खोलने से भी स्वराज्य नहीं मिलने का। रस्किन ने हमें ध्यान का पूरी तरह आविष्ट कर दिया है कि सोना-चांदी एकत्र होजाने से कुछ राज्य नहीं मिल जाता। यह स्मरण रखना चाहिए कि पश्चिम में सुधार हुए अभी साँ ही वर्ष हुए हैं, बल्कि मच फुल्लिंग तो पचास ही कहे जानें चाहिए। उतने ही दिनों में पश्चिम की जनता वर्णमकर-गी होती दिग्गड देने लगी है। हमारी यही प्रार्थना है कि यूरोप की-सी अवस्था भारत की

कदापि न हो। यूरोप के राष्ट्र एक दूसरे पर घात लगाये बैठे हैं। केवल अपनी तैयारी में लगे होने के ही कारण सब शान्त है। किसी समय जोरो की आग लगेगी तब यूरोप में नरक ही दिखाई देगा।* यूरोप का प्रत्येक राज्य काले आदमियों को अपना भक्ष्य मान बैठा है। जहाँ केवल धन का ही लोभ है वहाँ कुछ और हो ही कैसे सकता है? उन्हें यदि एक भी देश दिखाई देता है, तो वह उसी तरह उस पर टूट पड़ते हैं जिस तरह चील और कौवे मांस पर टूटते हैं। यह सब उनके कारखानों के ही कारण होता है, यह मानने के लिए हमारे पास कारण है।

अन्त में भारत को स्वराज्य मिले, यह समस्त भारतवासियों की पुकार है और यह उचित ही

* सन् १९१४ में महासमर की आग लगने पर यह भविष्यवाणी सत्य प्रमाणित हो चुकी है।

हैं; परन्तु स्वराज्य हमें नीति मार्ग से प्राप्त करना है। वह नाम का नहीं, वास्तविक स्वराज्य होना चाहिए। ऐसा स्वराज्य नाशकारी उपायों से नहीं मिल सकता। उद्योग की आवश्यकता है; पर उद्योग मजदूरी से होना चाहिए। भारतभूमि एक दिन स्वर्णभूमि बन लानी थी, इसलिए कि भारतवर्षी स्वर्णरूप थे। भूमि तो बही है; पर आदमी बदल गया है, इसलिए वह भूमि उजाड़-सी हो गई है। उसे पुनः सुवर्ण बनाने के लिए हमें सदगुणों द्वारा स्वर्णरूप बनाना है। हमें स्वर्ण बनानेवाला पारसमणि दो अक्षरों में अन्तर्निहित है और वह है 'मत्य'। इसलिए यदि प्रत्येक भारतवर्षी 'मत्य' का ही आग्रह करेगा तो भारत को घर बैठे स्वराज्य मिल जायगा।

‘लोक साहित्य माला’ की पुस्तकें

- | | | |
|-------------------------------|------------------|---|
| १-गाँव की कहानी | (स्व० गौड़जी) | ॥ |
| २-महाभारत के पात्र-१ | (नानाभाई) | ॥ |
| ३-संतवाणी | (वियोगी हरि) | ॥ |
| ४-अंग्रेजी राज्य मे हमारी दशा | (डा० अहमद) | ॥ |
| ५-लोक-जीवन | (काका कालेलकर) | ॥ |
| ६-राजनीति प्रवेशिका | (हेरल्ड लास्की) | ॥ |
| ७-अधिकार और कर्तव्य | (कृष्णचन्द्र) | ॥ |
| ८-सुगम चिकित्सा | (चतुरसेन शाम्बी) | ॥ |
| ९-महाभारत के पात्र-२ | (नानाभाई) | ॥ |
| १०-पिता के पत्र पुत्री के नाम | (ज० नेहरू) | ॥ |

‘नवजीवन माला’ की पुस्तकें

- | | | |
|-----------------------|--------------|--------------|
| १-गीताबोध | (गाँधीजी) | -)॥ |
| २-मंगल प्रभात | ” | -)॥ |
| ३-अनासक्तियोग | (गाँधीजी) | =) |
| ” | श्लोक सहित | =) सजिल्द ।) |
| ४-सर्वोदय | (गाँधीजी) | -) |
| ५-नवयुवको से दो बातें | (क्रोपाटकिन) | -) |
| ६-हिन्द स्वराज्य | (गाँधीजी) | =) |

- ७-श्रुतदान की भाषा (आनन्द कांगल्याचन)-
 ८-किशानों का मवाल (डा० प्रहमद) =)
 ९ ग्राम सेवा (गाँधीजी) -)
 १०-त्यागी-गादी की लड़ाई (विनोबा) =)
 ११-अधुमकर्षी पालन (शां० मो० चित्रेः)=)
 १२-गाँवों का आर्थिक मवाल 1)

आगे होनेवाले प्रकाशन

- १-जीवन शोधन—किशोरलाल मशरवाला
 २-न्यायवाद पृथिवीवाद—
 ३-फेमिनिस्टवाद
 ४-नया शासन विधान—(फेटरेशन)
 ५-ग्रामचर्य (गाँधीजी)
 ६-रामारी आजादी का लड़ाई (दो भाग)
 ७-स्वतन्त्र विज्ञान—१ (चन्द्रगुप्त चाप्लेन)
 ८-स्वतन्त्र की शासन पद्धतियों (रामचन्द्र वर्मा)
 ९-रामारे गाँव (चौ०मुञ्जतर सिंह)
 १०-गाँवी साहित्य माला—(रमण गाँधीजी के

चुने हुए लेखों का संग्रह होगा—इस माला में २० पुस्तकें निकलेंगी । प्रत्येक का दाम ॥) होगा । पृष्ठ संख्या २००-२५०

११-टाल्स्टाय ग्रन्थावलि—(टाल्स्टाय के चुने हुए निबन्धों, लेखों और कहानियों का संग्रह । प्रत्येक का मूल्य ॥) ।

१२-बाल साहित्य माला—(बालोपयोगी पुस्तकें)

१३-लोक साहित्य माला—(इसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर २०० पुस्तकें निकलेंगी । प्रत्येक का दाम ॥) ।

१४-नवराष्ट्र माला—इसमें ससार के प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्रनिर्मातृओं और राष्ट्रों का परिचय होगा । पुस्तकें सचित्र होंगी । प्रत्येक का मू० ॥॥) होगा ।

१५-नवजीवनमाला—छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तकें ।

१६-सामयिक साहित्य माला—सामयिक समस्याओं पर मान्य नेताओं की लिखी छोटी-छोटी पुस्तकें ।

